0958CH01

गिल्लू

महादेवी वर्मा

सोनजुही[1] में आज एक पीली कली लगी है। इसे देखकर अनायास[2] ही उस छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता की सघन हरीतिमा[3] में छिपकर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुँचते ही कंधे पर कूदकर मुझे चौंका देता था। तब मुझे कली की खोज रहती थी, पर आज उस लघुप्राण[4] की खोज है।

परंतु वह तो अब तक इस सोनजुही की जड़ में मिट्टी होकर मिल गया होगा। कौन जाने स्वर्णिम कली के बहाने वही मुझे चौंकाने ऊपर आ गया हो!

अचानक एक दिन सवेरे कमरे से बरामदे में आकर मैंने देखा, दो कौवे एक गमले के चारों ओर चोंचों से छूआ-छुऔवल[5] जैसा खेल खेल रहे हैं। यह काकभुशुंडि भी विचित्र पक्षी है—एक साथ समादरित[6] अनादरित[7], अति सम्मानित अति अवमानित।

हमारे बेचारे पुरखे न गरुड़ के रूप में आ सकते हैं, न मयूर के, न हंस के। उन्हें पितरपक्ष में हमसे कुछ पाने के लिए काक बनकर ही अवतीर्ण[8] होना पड़ता है। इतना ही नहीं हमारे दूरस्थ प्रियजनों को भी अपने आने का मधु संदेश इनके कर्कश[9] स्वर में ही देना पड़ता है। दूसरी ओर हम कौवा और काँव-काँव करने को अवमानना के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं।

---

1. जूही (पुष्प) का एक प्रकार जो पीला होता है 2. अचानक 3. हरियाली 4. छोटा जीव 5. चुपके से छूकर छुप जाना और फिर छूना 6. विशेष आदर 7. आदर का अभाव, तिरस्कार 8. प्रकट 9. कटु, कानों को न भाने वाली

© NCERT not to be republished

मेरे काकपुराण के विवेचन में अचानक बाधा आ पड़ी, क्योंकि गमले और दीवार की संधि में छिपे एक छोटे-से जीव पर मेरी दृष्टि रुक गई। निकट जाकर देखा, गिलहरी का छोटा-सा बच्चा है जो संभवतः घोंसले से गिर पड़ा है और अब कौवे जिसमें सुलभ आहार खोज रहे हैं।

काकद्वय[1] की चोंचों के दो घाव उस लघुप्राण के लिए बहुत थे, अतः वह निश्चेष्ट[2]-सा गमले से चिपटा पड़ा था।

सबने कहा, कौवे की चोंच का घाव लगने के बाद यह बच नहीं सकता, अतः इसे ऐसे ही रहने दिया जाए।

परंतु मन नहीं माना—उसे हौले से उठाकर अपने कमरे में लाई, फिर रुई से रक्त पोंछकर घावों पर पेंसिलिन का मरहम लगाया।

रुई की पतली बत्ती दूध से भिगोकर जैसे-जैसे उसके नन्हे से मुँह में लगाई पर मुँह खुल न सका और दूध की बूँदें दोनों ओर ढुलक गईं।

कई घंटे के उपचार के उपरांत उसके मुँह में एक बूँद पानी टपकाया जा सका। तीसरे दिन वह इतना अच्छा और आश्वस्त[3] हो गया कि मेरी उँगली अपने दो नन्हे पंजों से पकड़कर, नीले काँच के मोतियों जैसी आँखों से इधर-उधर देखने लगा।

तीन-चार मास में उसके स्निग्ध[4] रोएँ, झब्बेदार पूँछ और चंचल चमकीली आँखें सबको विस्मित[5] करने लगीं।

हमने उसकी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे दिया और इस प्रकार हम उसे गिल्लू कहकर बुलाने लगे। मैंने फूल रखने की एक हलकी डलिया में रुई बिछाकर उसे तार से खिड़की पर लटका दिया।

वही दो वर्ष गिल्लू का घर रहा। वह स्वयं हिलाकर अपने घर में झूलता और अपनी काँच के मनकों-सी आँखों से कमरे के भीतर और खिड़की से बाहर न जाने क्या देखता-समझता रहता था। परंतु उसकी समझदारी और कार्यकलाप पर सबको आश्चर्य होता था।

---

1. दो कौए 2. बिना किसी हरकत के 3. निश्चिंत 4. चिकना 5. आश्चर्यचकित

© NCERT not to be republished

जब मैं लिखने बैठती तब अपनी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की उसे इतनी तीव्र इच्छा होती थी कि उसने एक अच्छा उपाय खोज निकाला।

वह मेरे पैर तक आकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेज़ी से उतरता। उसका यह दौड़ने का क्रम तब तक चलता जब तक मैं उसे पकड़ने के लिए न उठती।

कभी मैं गिल्लू को पकड़कर एक लंबे लिफ़ाफ़े में इस प्रकार रख देती कि उसके अगले दो पंजों और सिर के अतिरिक्त सारा लघुगात[1] लिफ़ाफ़े के भीतर बंद रहता। इस अद्‌भुत स्थिति में कभी-कभी घंटों मेज़ पर दीवार के सहारे खड़ा रहकर वह अपनी चमकीली आँखों से मेरा कार्यकलाप देखा करता।

भूख लगने पर चिक-चिक करके मानो वह मुझे सूचना देता और काजू या बिस्कुट मिल जाने पर उसी स्थिति में लिफ़ाफ़े से बाहर वाले पंजों से पकड़कर उसे कुतरता।

फिर गिल्लू के जीवन का प्रथम बसंत आया। नीम-चमेली की गंध मेरे कमरे में हौले-हौले आने लगी। बाहर की गिलहरियाँ खिड़की की जाली के पास आकर चिक-चिक करके न जाने क्या कहने लगीं?

गिल्लू को जाली के पास बैठकर अपनेपन से बाहर झाँकते देखकर मुझे लगा कि इसे मुक्त करना आवश्यक है।

मैंने कीलें निकालकर जाली का एक कोना खोल दिया और इस मार्ग से गिल्लू ने बाहर जाने पर सचमुच ही मुक्ति की साँस ली। इतने छोटे जीव को घर में पले कुत्ते, बिल्लियों से बचाना भी एक समस्या ही थी।

आवश्यक कागज़-पत्रों के कारण मेरे बाहर जाने पर कमरा बंद ही रहता है। मेरे कॉलेज से लौटने पर जैसे ही कमरा खोला गया और मैंने भीतर पैर रखा, वैसे ही गिल्लू अपने जाली के द्वार से भीतर आकर मेरे पैर से सिर और सिर से पैर तक दौड़ लगाने लगा। तब से यह नित्य का क्रम हो गया।

---

1. छोटा शरीर

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

मेरे कमरे से बाहर जाने पर गिल्लू भी खिड़की की खुली जाली की राह बाहर चला जाता और दिन भर गिलहरियों के झुंड का नेता बना हर डाल पर उछलता-कूदता रहता और ठीक चार बजे वह खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता।

मुझे चौंकाने की इच्छा उसमें न जाने कब और कैसे उत्पन्न हो गई थी। कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में।

मेरे पास बहुत से पशु-पक्षी हैं और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परंतु उनमें से किसी को मेरे साथ मेरी थाली में खाने की हिम्मत हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।

गिल्लू इनमें अपवाद[1] था। मैं जैसे ही खाने के कमरे में पहुँचती, वह खिड़की से निकलकर आँगन की दीवार, बरामदा पार करके मेज़ पर पहुँच जाता और मेरी थाली में बैठ जाना चाहता। बड़ी कठिनाई से मैंने उसे थाली के पास बैठना सिखाया जहाँ बैठकर वह मेरी थाली में से एक-एक चावल उठाकर बड़ी सफ़ाई से खाता रहता। काजू उसका प्रिय खाद्य[2] था और कई दिन काजू न मिलने पर वह अन्य खाने की चीज़ें या तो लेना बंद कर देता या झूले से नीचे फेंक देता था।

उसी बीच मुझे मोटर दुर्घटना में आहत होकर कुछ दिन अस्पताल में रहना पड़ा। उन दिनों जब मेरे कमरे का दरवाज़ा खोला जाता गिल्लू अपने झूले से उतरकर दौड़ता और फिर किसी दूसरे को देखकर उसी तेज़ी से अपने घोंसले[3] में जा बैठता। सब उसे काजू दे आते, परंतु अस्पताल से लौटकर जब मैंने उसके झूले की सफ़ाई की तो उसमें काजू भरे मिले, जिनसे ज्ञात होता था कि वह उन दिनों अपना प्रिय खाद्य कितना कम खाता रहा।

मेरी अस्वस्थता में वह तकिए पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हे-नन्हे पंजों से मेरे सिर और बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका[4] के हटने के समान लगता।

---

1. सामान्य नियम को बाधित या मर्यादित करने वाला 2. भोजन 3. नीड़, रहने की जगह 4. सेविका

© NCERT not to be republished

गरमियों में जब मैं दोपहर में काम करती रहती तो गिल्लू न बाहर जाता न अपने झूले में बैठता। उसने मेरे निकट रहने के साथ गरमी से बचने का एक सर्वथा नया उपाय खोज निकाला था। वह मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता और इस प्रकार समीप भी रहता और ठंडक में भी रहता।

गिलहरियों के जीवन की अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं होती, अतः गिल्लू की जीवन यात्रा का अंत आ ही गया। दिन भर उसने न कुछ खाया न बाहर गया। रात में अंत की यातना में भी वह अपने झूले से उतरकर मेरे बिस्तर पर आया और ठंडे पंजों से मेरी वही उँगली पकड़कर हाथ से चिपक गया, जिसे उसने अपने बचपन की मरणासन्न[1] स्थिति में पकड़ा था।

पंजे इतने ठंडे हो रहे थे कि मैंने जागकर हीटर जलाया और उसे उष्णता[2] देने का प्रयत्न किया। परंतु प्रभात की प्रथम किरण के स्पर्श के साथ ही वह किसी और जीवन में जागने के लिए सो गया।

उसका झूला उतारकर रख दिया गया है और खिड़की की जाली बंद कर दी गई है, परंतु गिलहरियों की नयी पीढ़ी जाली के उस पार चिक-चिक करती ही रहती है और सोनजुही पर बसंत आता ही रहता है।

सोनजुही की लता के नीचे गिल्लू को समाधि दी गई है—इसलिए भी कि उसे वह लता सबसे अधिक प्रिय थी—इसलिए भी कि उस लघुगात का, किसी वासंती दिन, जुही के पीताभ[3] छोटे फूल में खिल जाने का विश्वास, मुझे संतोष देता है।

बोध-प्रश्न

1. सोनजुही में लगी पीली कली को देख लेखिका के मन में कौन से विचार उमड़ने लगे?
2. पाठ के आधार पर कौए को एक साथ समादरित और अनादरित प्राणी क्यों कहा गया है?
3. गिलहरी के घायल बच्चे का उपचार किस प्रकार किया गया?

1. जिसकी मृत्यु निकट हो, मृत्यु के समीप पहुँचा हुआ 2. गरमी 3. पीले रंग का

not to be republished © NCERT

4. लेखिका का ध्यान आकर्षित करने के लिए गिल्लू क्या करता था?
5. गिल्लू को मुक्त करने की आवश्यकता क्यों समझी गई और उसके लिए लेखिका ने क्या उपाय किया?
6. गिल्लू किन अर्थों में परिचारिका की भूमिका निभा रहा था?
7. गिल्लू की किन चेष्टाओं से यह आभास मिलने लगा था कि अब उसका अंत समय समीप है?
8. 'प्रभात की प्रथम किरण के स्पर्श के साथ ही वह किसी और जीवन में जागने के लिए सो गया'—का आशय स्पष्ट कीजिए।
9. सोनजुही की लता के नीचे बनी गिल्लू की समाधि से लेखिका के मन में किस विश्वास का जन्म होता है?

© NCERT not to be republished

0958CH02

स्मृति

श्रीराम शर्मा

सन् 1908 ई. की बात है। दिसंबर का आखीर या जनवरी का प्रारंभ होगा। चिल्ला[1] जाड़ा पड़ रहा था। दो-चार दिन पूर्व कुछ बूँदा-बाँदी हो गई थी, इसलिए शीत की भयंकरता और भी बढ़ गई थी। सायंकाल के साढ़े तीन या चार बजे होंगे। कई साथियों के साथ मैं झरबेरी के बेर तोड़-तोड़कर खा रहा था कि गाँव के पास से एक आदमी ने ज़ोर से पुकारा कि तुम्हारे भाई बुला रहे हैं, शीघ्र ही घर लौट जाओ। मैं घर को चलने लगा। साथ में छोटा भाई भी था। भाई साहब की मार का डर था इसलिए सहमा हुआ चला जाता था। समझ में नहीं आता था कि कौन-सा कसूर बन पड़ा। डरते-डरते घर में घुसा। आशंका[2] थी कि बेर खाने के अपराध में ही तो पेशी न हो। पर आँगन में भाई साहब को पत्र लिखते पाया। अब पिटने का भय दूर हुआ। हमें देखकर भाई साहब ने कहा–"इन पत्रों को ले जाकर मक्खनपुर डाकखाने में डाल आओ। तेज़ी से जाना, जिससे शाम की डाक में चिट्ठियाँ निकल जाएँ। ये बड़ी ज़रूरी हैं।"

जाड़े के दिन थे ही, तिस पर हवा के प्रकोप से कँप-कँपी लग रही थी। हवा मज्जा[3] तक ठिठुरा रही थी, इसलिए हमने कानों को धोती से बाँधा। माँ ने भुँजाने[4] के लिए थोड़े चने एक धोती में बाँध दिए। हम दोनों भाई अपना-अपना डंडा लेकर घर से निकल पड़े। उस समय उस बबूल के डंडे से जितना मोह था, उतना इस उमर में रायफल से नहीं। मेरा डंडा अनेक साँपों के लिए नारायण-वाहन हो चुका

1. कड़ी सरदी 2. डर 3. हड्डी के भीतर भरा मुलायम पदार्थ 4. भुनवाना

© NCERT not to be republished

था। मक्खनपुर के स्कूल और गाँव के बीच पड़ने वाले आम के पेड़ों से प्रतिवर्ष उससे आम झुरे[1] जाते थे। इस कारण वह मूक डंडा सजीव-सा प्रतीत होता था। प्रसन्नवदन[2] हम दोनों मक्खनपुर की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। चिट्ठियों को मैंने टोपी में रख लिया, क्योंकि कुर्ते में जेबें न थीं।

हम दोनों उछलते-कूदते, एक ही साँस में गाँव से चार फर्लांग दूर उस कुएँ के पास आ गए जिसमें एक अति भयंकर काला साँप पड़ा हुआ था। कुआँ कच्चा था, और चौबीस हाथ गहरा था। उसमें पानी न था। उसमें न जाने साँप कैसे गिर गया था? कारण कुछ भी हो, हमारा उसके कुएँ में होने का ज्ञान केवल दो महीने का था। बच्चे नटखट होते ही हैं। मक्खनपुर पढ़ने जाने वाली हमारी टोली पूरी बानर टोली थी। एक दिन हम लोग स्कूल से लौट रहे थे कि हमको कुएँ में उझकने[3] की सूझी। सबसे पहले उझकने वाला मैं ही था। कुएँ में झाँककर एक ढेला फेंका कि उसकी आवाज़ कैसी होती है। उसके सुनने के बाद अपनी बोली की प्रतिध्वनि[4] सुनने की इच्छा थी, पर कुएँ में ज्योंही ढेला गिरा, त्योंही एक फुसकार सुनाई पड़ी। कुएँ के किनारे खड़े हुए हम सब बालक पहले तो उस फुसकार से ऐसे चकित हो गए जैसे किलोलें[5] करता हुआ मृगसमूह अति समीप के कुत्ते की भौंक से चकित हो जाता है। उसके उपरांत सभी ने उछल-उछलकर एक-एक ढेला फेंका और कुएँ से आने वाली क्रोधपूर्ण फुसकार पर कहकहे लगाए।

गाँव से मक्खनपुर जाते और मक्खनपुर से लौटते समय प्रायः प्रतिदिन ही कुएँ में ढेले डाले जाते थे। मैं तो आगे भागकर आ जाता था और टोपी को एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ से ढेला फेंकता था। यह रोज़ाना की आदत-सी हो गई थी। साँप से फुसकार करवा लेना मैं उस समय बड़ा काम समझता था। इसलिए जैसे ही हम दोनों उस कुएँ की ओर से निकले, कुएँ में ढेला फेंककर फुसकार सुनने की प्रवृत्ति[6] जाग्रत हो गई। मैं कुएँ की ओर बढ़ा। छोटा भाई मेरे पीछे ऐसे हो लिया जैसे बड़े

---

1. तोड़ना 2. प्रसन्न चेहरा 3. उचकना, पंजे के बल उचककर झाँकना 4. किसी शब्द के उपरांत सुनाई पड़ने वाला उसी से उत्पन्न शब्द, गूँज 5. क्रीड़ा 6. मन का किसी विषय की ओर झुकाव

© NCERT not to be republished

मृगशावक[1] के पीछे छोटा मृगशावक हो लेता है। कुएँ के किनारे से एक ढेला उठाया और उछलकर एक हाथ से टोपी उतारते हुए साँप पर ढेला गिरा दिया, पर मुझ पर तो बिजली-सी गिर पड़ी। साँप ने फुसकार मारी या नहीं, ढेला उसे लगा या नहीं यह बात अब तक स्मरण नहीं। टोपी के हाथ में लेते ही तीनों चिट्ठियाँ चक्कर काटती हुई कुएँ में गिर रही थीं। अकस्मात् जैसे घास चरते हुए हिरन की आत्मा गोली से हत होने पर निकल जाती है और वह तड़पता रह जाता है, उसी भाँति वे चिट्ठियाँ क्या टोपी से निकल गईं, मेरी तो जान निकल गई। उनके गिरते ही मैंने उनको पकड़ने के लिए एक झपट्टा भी मारा; ठीक वैसे जैसे घायल शेर शिकारी को पेड़ पर चढ़ते देख उस पर हमला करता है। पर वे तो पहुँच से बाहर हो चुकी थीं। उनको पकड़ने की घबराहट में मैं स्वयं झटके के कारण कुएँ में गिर गया होता।

कुएँ की पाट पर बैठे हम रो रहे थे—छोटा भाई ढाढ़ें[2] मारकर और मैं चुपचाप आँखें डबडबाकर। पतीली में उफ़ान आने से ढकना ऊपर उठ जाता है और पानी बाहर टपक जाता है। निराशा, पिटने के भय और उद्वेग[3] से रोने का उफ़ान आता था। पलकों के ढकने भीतरी भावों को रोकने का प्रयत्न करते थे, पर कपोलों पर आँसू ढुलक ही जाते थे। माँ की गोद की याद आती थी। जी चाहता था कि माँ आकर छाती से लगा ले और लाड़-प्यार करके कह दे कि कोई बात नहीं, चिट्ठियाँ फिर लिख ली जाएँगी। तबीयत करती थी कि कुएँ में बहुत-सी मिट्टी डाल दी जाए और घर जाकर कह दिया जाए कि चिट्ठी डाल आए, पर उस समय मैं झूठ बोलना जानता ही न था। घर लौटकर सच बोलने पर रुई की तरह धुनाई होती। मार के खयाल से शरीर ही नहीं मन भी काँप जाता था। सच बोलकर पिटने के भावी भय और झूठ बोलकर चिट्ठियों के न पहुँचने की ज़िम्मेदारी के बोझ से दबा मैं बैठा सिसक रहा था। इसी सोच-विचार में पंद्रह मिनट होने को आए। देर हो रही थी, और उधर दिन का बुढ़ापा बढ़ता जाता था। कहीं भाग जाने को तबीयत करती थी, पर पिटने का भय और ज़िम्मेदारी की दुधारी[4] तलवार कलेजे पर फिर रही थी।

1. हिरन का बच्चा 2. ज़ोर-ज़ोर से रोना 3. बेचैनी, घबराहट 4. दोनों तरफ़ से धार वाली, दो धारों वाली

दृढ़ संकल्प से दुविधा की बेड़ियाँ कट जाती हैं। मेरी दुविधा भी दूर हो गई। कुएँ में घुसकर चिट्ठियों को निकालने का निश्चय किया। कितना भयंकर निर्णय था! पर जो मरने को तैयार हो, उसे क्या? मूर्खता अथवा बुद्धिमत्ता से किसी काम को करने के लिए कोई मौत का मार्ग ही स्वीकार कर ले, और वह भी जानबूझकर, तो फिर वह अकेला संसार से भिड़ने को तैयार हो जाता है। और फल? उसे फल की क्या चिंता। फल तो किसी दूसरी शक्ति पर निर्भर है। उस समय चिट्ठियाँ निकालने के लिए मैं विषधर से भिड़ने को तैयार हो गया। पासा फेंक दिया था। मौत का आलिंगन हो अथवा साँप से बचकर दूसरा जन्म–इसकी कोई चिंता न थी। पर विश्वास यह था कि डंडे से साँप को पहले मार दूँगा, तब फिर चिट्ठियाँ उठा लूँगा। बस इसी दृढ़ विश्वास के बूते पर मैंने कुएँ में घुसने की ठानी।

छोटा भाई रोता था और उसके रोने का तात्पर्य था कि मेरी मौत मुझे नीचे बुला रही है, यद्यपि वह शब्दों से न कहता था। वास्तव में मौत सजीव और नग्न रूप में कुएँ में बैठी थी, पर उस नग्न मौत से मुठभेड़ के लिए मुझे भी नग्न होना पड़ा। छोटा भाई भी नंगा हुआ। एक धोती मेरी, एक छोटे भाई की, एक चनेवाली, दो कानों से बँधी हुई धोतियाँ–पाँच धोतियाँ और कुछ रस्सी मिलाकर कुएँ की गहराई के लिए काफ़ी हुईं। हम लोगों ने धोतियाँ एक-दूसरी से बाँधी और खूब खींच-खींचकर आज़मा लिया कि गाँठें कड़ी हैं या नहीं। अपनी ओर से कोई धोखे का काम न रखा। धोती के एक सिरे पर डंडा बाँधा और उसे कुएँ में डाल दिया। दूसरे सिरे को डेंग (वह लकड़ी जिस पर चरस-पुर टिकता है) के चारों ओर एक चक्कर देकर और एक गाँठ लगाकर छोटे भाई को दे दिया। छोटा भाई केवल आठ वर्ष का था, इसीलिए धोती को डेंग से कड़ी करके बाँध दिया और तब उसे खूब मज़बूती से पकड़ने के लिए कहा। मैं कुएँ में धोती के सहारे घुसने लगा। छोटा भाई रोने लगा। मैंने उसे आश्वासन[1] दिलाया कि मैं कुएँ के नीचे पहुँचते ही साँप को मार दूँगा और मेरा विश्वास भी ऐसा ही था। कारण यह था कि इससे पहले मैंने अनेक साँप मारे

1. भरोसा, दिलासा

© NCERT not to be republished

थे। इसलिए कुएँ में घुसते समय मुझे साँप का तनिक भी भय न था। उसको मारना मैं बाएँ हाथ का खेल समझता था।

कुएँ के धरातल से जब चार-पाँच गज़ रहा हूँगा, तब ध्यान से नीचे को देखा। अक्ल चकरा गई। साँप फन फैलाए धरातल से एक हाथ ऊपर उठा हुआ लहरा रहा था। पूँछ और पूँछ के समीप का भाग पृथ्वी पर था, आधा अग्र भाग ऊपर उठा हुआ मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। नीचे डंडा बँधा था, मेरे उतरने की गति से जो इधर-उधर हिलता था। उसी के कारण शायद मुझे उतरते देख साँप घातक[1] चोट के आसन पर बैठा था। सँपेरा जैसे बीन बजाकर काले साँप को खिलाता है और साँप क्रोधित हो फन फैलाकर खड़ा होता और फुँकार मारकर चोट करता है, ठीक उसी प्रकार साँप तैयार था। उसका प्रतिद्वंद्वी[2]—मैं—उससे कुछ हाथ ऊपर धोती पकड़े लटक रहा था। धोती डेंग से बँधी होने के कारण कुएँ के बीचोंबीच लटक रही थी और मुझे कुएँ के धरातल की परिधि के बीचोंबीच ही उतरना था। इसके माने थे साँप से डेढ़-दो फुट—गज़ नहीं—की दूरी पर पैर रखना, और इतनी दूरी पर साँप पैर रखते ही चोट करता। स्मरण रहे, कच्चे कुएँ का व्यास बहुत कम होता है। नीचे तो वह डेढ़ गज़ से अधिक होता ही नहीं। ऐसी दशा में कुएँ में मैं साँप से अधिक-से-अधिक चार फुट की दूरी पर रह सकता था, वह भी उस दशा में जब साँप मुझसे दूर रहने का प्रयत्न करता, पर उतरना तो था कुएँ के बीच में, क्योंकि मेरा साधन बीचोंबीच लटक रहा था। ऊपर से लटककर तो साँप नहीं मारा जा सकता था। उतरना तो था ही। थकावट से ऊपर चढ़ भी नहीं सकता था। अब तक अपने प्रतिद्वंद्वी को पीठ दिखाने का निश्चय नहीं किया था। यदि ऐसा करता भी तो कुएँ के धरातल पर उतरे बिना क्या मैं ऊपर चढ़ सकता था—धीरे-धीरे उतरने लगा। एक-एक इंच ज्यों-ज्यों मैं नीचे उतरता जाता था, त्यों-त्यों मेरी एकाग्रचित्तता[3] बढ़ती जाती थी। मुझे एक सूझ[4] सूझी। दोनों हाथों से धोती पकड़े हुए मैंने अपने पैर कुएँ की बगल में लगा दिए। दीवार से पैर लगाते ही कुछ मिट्टी

---

1. जो नुकसान पहुँचाए, घात करने वाला 2. विपक्षी, शत्रु 3. स्थिरचित्त, ध्यान 4. तरीका, उपाय

नीचे गिरी और साँप ने फू करके उस पर मुँह मारा। मेरे पैर भी दीवार से हट गए, और मेरी टाँगें कमर से समकोण बनाती हुई लटकती रहीं, पर इससे साँप से दूरी और कुएँ की परिधि पर उतरने का ढंग मालूम हो गया। तनिक झूलकर मैंने अपने पैर कुएँ की बगल से सटाए, और कुछ धक्के के साथ अपने प्रतिद्वंद्वी के सम्मुख कुएँ की दूसरी ओर डेढ़ गज़ पर–कुएँ के धरातल पर खड़ा हो गया। आँखें चार हुईं। शायद एक–दूसरे को पहचाना। साँप को चक्षुःश्रवा[1] कहते हैं। मैं स्वयं चक्षुःश्रवा हो रहा था। अन्य इंद्रियों ने मानो सहानुभूति से अपनी शक्ति आँखों को दे दी हो। साँप के फन की ओर मेरी आँखें लगी हुई थीं कि वह कब किस ओर को आक्रमण करता है। साँप ने मोहनी–सी डाल दी थी। शायद वह मेरे आक्रमण की प्रतीक्षा में था, पर जिस विचार और आशा को लेकर मैंने कुएँ में घुसने की ठानी थी, वह तो आकाश–कुसुम था। मनुष्य का अनुमान और भावी योजनाएँ कभी–कभी कितनी मिथ्या और उलटी निकलती हैं। मुझे साँप का साक्षात् होते ही अपनी योजना और आशा की असंभवता प्रतीत हो गई। डंडा चलाने के लिए स्थान ही न था। लाठी या डंडा चलाने के लिए काफ़ी स्थान चाहिए जिसमें वे घुमाए जा सकें। साँप को डंडे से दबाया जा सकता था, पर ऐसा करना मानो तोप के मुहरे पर खड़ा होना था। यदि फन या उसके समीप का भाग न दबा, तो फिर वह पलटकर ज़रूर काटता, और फन के पास दबाने की कोई संभावना भी होती तो फिर उसके पास पड़ी हुई दो चिट्ठियों को कैसे उठाता? दो चिट्ठियाँ उसके पास उससे सटी हुई पड़ी थीं और एक मेरी ओर थी। मैं तो चिट्ठियाँ लेने ही उतरा था। हम दोनों अपने पैंतरों[2] पर डटे थे। उस आसन पर खड़े–खड़े मुझे चार–पाँच मिनट हो गए। दोनों ओर से मोरचे पड़े हुए थे, पर मेरा मोरचा कमज़ोर था। कहीं साँप मुझ पर झपट पड़ता तो मैं–यदि बहुत करता तो–उसे पकड़कर, कुचलकर मार देता, पर वह तो अचूक[3] तरल विष मेरे शरीर में पहुँचा ही देता और अपने साथ–साथ मुझे भी ले जाता। अब तक साँप ने वार न किया था, इसलिए मैंने भी

1. आँखों से सुनने वाला 2. मुद्रा, स्थिति 3. खाली न जाने वाला, निश्चित

© NCERT not to be republished

उसे डंडे से दबाने का खयाल छोड़ दिया। ऐसा करना उचित भी न था। अब प्रश्न था कि चिट्ठियाँ कैसे उठाई जाएँ। बस, एक सूरत थी। डंडे से साँप की ओर से चिट्ठियों को सरकाया जाए। यदि साँप टूट पड़ा, तो कोई चारा न था। कुर्ता था, और कोई कपड़ा न था जिससे साँप के मुँह की ओर करके उसके फन को पकड़ लूँ। मारना या बिलकुल छेड़खानी न करना–ये दो मार्ग थे। सो पहला मेरी शक्ति के बाहर था। बाध्य होकर दूसरे मार्ग का अवलंबन[1] करना पड़ा।

डंडे को लेकर ज्यों ही मैंने साँप की दाईं ओर पड़ी चिट्ठी की ओर उसे बढ़ाया कि साँप का फन पीछे की ओर हुआ। धीरे-धीरे डंडा चिट्ठी की ओर बढ़ा और ज्योंही चिट्ठी के पास पहुँचा कि फुंकार के साथ काली बिजली तड़पी और डंडे पर गिरी। हृदय में कंप हुआ, और हाथों ने आज्ञा न मानी। डंडा छूट पड़ा। मैं तो न मालूम कितना ऊपर उछल गया। जान-बूझकर नहीं, यों ही बिदककर। उछलकर जो खड़ा हुआ, तो देखा डंडे के सिर पर तीन-चार स्थानों पर पीव-सा कुछ लगा हुआ है। वह विष था। साँप ने मानो अपनी शक्ति का सर्टीफिकेट सामने रख दिया था, पर मैं तो उसकी योग्यता का पहले ही से कायल[2] था। उस सर्टीफिकेट की ज़रूरत न थी। साँप ने लगातार फूँ-फूँ करके डंडे पर तीन-चार चोटें कीं। वह डंडा पहली बार इस भाँति अपमानित हुआ था, या शायद वह साँप का उपहास कर रहा था।

उधर ऊपर फूँ-फूँ और मेरे उछलने और फिर वहीं धमाके से खड़े होने से छोटे भाई ने समझा कि मेरा कार्य समाप्त हो गया और बंधुत्व का नाता फूँ-फूँ और धमाके में टूट गया। उसने खयाल किया कि साँप के काटने से मैं गिर गया। मेरे कष्ट और विरह के खयाल से उसके कोमल हृदय को धक्का लगा। भ्रातृ-स्नेह के ताने-बाने को चोट लगी। उसकी चीख निकल गई।

छोटे भाई की आशंका बेजा न थी, पर उस फूँ और धमाके से मेरा साहस कुछ बढ़ गया। दुबारा फिर उसी प्रकार लिफ़ाफ़े को उठाने की चेष्टा की। अबकी बार साँप ने वार भी किया और डंडे से चिपट भी गया। डंडा हाथ से छूटा तो नहीं पर

1. सहारा 2. मानने वाला

झिझक, सहम अथवा आतंक से अपनी ओर को खिंच गया और गुंजल्क[1] मारता हुआ साँप का पिछला भाग मेरे हाथों से छू गया। उफ़, कितना ठंडा था! डंडे को मैंने एक ओर पटक दिया। यदि कहीं उसका दूसरा वार पहले होता, तो उछलकर मैं साँप पर गिरता और न बचता, लेकिन जब जीवन होता है, तब हज़ारों ढंग बचने के निकल आते हैं। वह दैवी कृपा थी। डंडे के मेरी ओर खिंच आने से मेरे और साँप के आसन बदल गए। मैंने तुरंत ही लिफ़ाफ़े और पोस्टकार्ड चुन लिए। चिट्ठियों को धोती के छोर में बाँध दिया, और छोटे भाई ने उन्हें ऊपर खींच लिया।

डंडे को साँप के पास से उठाने में भी बड़ी कठिनाई पड़ी। साँप उससे खुलकर उस पर धरना देकर बैठा था। जीत तो मेरी हो चुकी थी, पर अपना निशान गँवा चुका था। आगे हाथ बढ़ाता तो साँप हाथ पर वार[2] करता, इसलिए कुएँ की बगल से एक मुट्ठी मिट्टी लेकर मैंने उसकी दाईं ओर फेंकी कि वह उस पर झपटा, और मैंने दूसरे हाथ से उसकी बाईं ओर से डंडा खींच लिया, पर बात-की-बात में उसने दूसरी ओर भी वार किया। यदि बीच में डंडा न होता, तो पैर में उसके दाँत गड़ गए होते।

अब ऊपर चढ़ना कोई कठिन काम न था। केवल हाथों के सहारे, पैरों को बिना कहीं लगाए हुए 36 फुट ऊपर चढ़ना मुझसे अब नहीं हो सकता। 15-20 फुट बिना पैरों के सहारे, केवल हाथों के बल, चढ़ने की हिम्मत रखता हूँ; कम ही, अधिक नहीं। पर उस ग्यारह वर्ष की अवस्था में मैं 36 फुट चढ़ा। बाहें भर गई थीं। छाती फूल गई थी। धौंकनी चल रही थी। पर एक-एक इंच सरक-सरककर अपनी भुजाओं के बल मैं ऊपर चढ़ आया। यदि हाथ छूट जाते तो क्या होता इसका अनुमान करना कठिन है। ऊपर आकर, बेहाल होकर, थोड़ी देर तक पड़ा रहा। देह को झार-झूरकर धोती-कुर्ता पहना। फिर किशनपुर के लड़के को, जिसने ऊपर चढ़ने की चेष्टा को देखा था, ताकीद[3] करके कि वह कुएँ वाली घटना किसी से न कहे, हम लोग आगे बढ़े।

---

1. गुत्थी, गाँठ 2. प्रहार, चोट 3. बार-बार चेताने की क्रिया

सन् 1915 में मैट्रीक्युलेशन पास करने के उपरांत यह घटना मैंने माँ को सुनाई। सजल नेत्रों से माँ ने मुझे अपनी गोद में ऐसे बिठा लिया जैसे चिड़िया अपने बच्चों को डैने[1] के नीचे छिपा लेती है।

कितने अच्छे थे वे दिन! उस समय रायफल न थी, डंडा था और डंडे का शिकार–कम-से-कम उस साँप का शिकार–रायफल के शिकार से कम रोचक और भयानक न था।

बोध-प्रश्न

1. भाई के बुलाने पर घर लौटते समय लेखक के मन में किस बात का डर था?
2. मक्खनपुर पढ़ने जाने वाली बच्चों की टोली रास्ते में पड़ने वाले कुएँ में ढेला क्यों फेंकती थी?
3. 'साँप ने फुसकार मारी या नहीं, ढेला उसे लगा या नहीं, यह बात अब तक स्मरण नहीं'–यह कथन लेखक की किस मनोदशा को स्पष्ट करता है?
4. किन कारणों से लेखक ने चिट्ठियों को कुएँ से निकालने का निर्णय लिया?
5. साँप का ध्यान बँटाने के लिए लेखक ने क्या-क्या युक्तियाँ अपनाईं?
6. कुएँ में उतरकर चिट्ठियों को निकालने संबंधी साहसिक वर्णन को अपने शब्दों में लिखिए।
7. इस पाठ को पढ़ने के बाद किन-किन बाल-सुलभ शरारतों के विषय में पता चलता है?
8. 'मनुष्य का अनुमान और भावी योजनाएँ कभी-कभी कितनी मिथ्या और उलटी निकलती हैं'–का आशय स्पष्ट कीजिए।
9. 'फल तो किसी दूसरी शक्ति पर निर्भर है'–पाठ के संदर्भ में इस पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।

---

1. पंख

© NCERT not to be republished

0958CH03

कल्लू कुम्हार की उनाकोटी

के. विक्रम सिंह

ध्वनि में यह अद्‌भुत गुण है कि एक क्षण में ही वह आपको किसी दूसरे समय-संदर्भ में पहुँचा सकती है। मैं उनमें से नहीं हूँ जो सुबह चार बजे उठते हैं, पाँच बजे तक तैयार हो लेते हैं और फिर लोधी गार्डन पहुँचकर मकबरों और मेम साहबों की सोहबत[1] में लंबी सैर पर निकल जाते हैं। मैं आमतौर पर सूर्योदय के साथ उठता हूँ, अपनी चाय खुद बनाता हूँ और फिर चाय और अखबार लेकर लंबी अलसायी सुबह का आनंद लेता हूँ। अकसर अखबार की खबरों पर मेरा कोई ध्यान नहीं रहता। यह तो सिर्फ़ दिमाग को कटी पतंग की तरह यों ही हवा में तैरने देने का एक बहाना है। दरअसल इसे कटी पतंग योग भी कहा जा सकता है। इसे मैं अपने लिए काफ़ी ऊर्जादायी[2] पाता हूँ और मेरा दृढ़ विश्वास है कि संभवत: इससे मुझे एक और दिन के लिए दुनिया का सामना करने में मदद मिलती है—एक ऐसी दुनिया का सामना करने में जिसका कोई सिर-पैर समझ पाने में मैं अब खुद को असमर्थ पाता हूँ।

अभी हाल में मेरी इस शांतिपूर्ण दिनचर्या में एक दिन खलल[3] पड़ गया। मैं जगा एक ऐसी कानफाड़ू[4] आवाज़ से, जो तोप दगने और बम फटने जैसी थी, गोया जॉर्ज डब्लू. बुश और सद्दाम हुसैन की मेहरबानी से तीसरे विश्वयुद्ध की शुरुआत हो चुकी हो। खुदा का शुक्र है कि ऐसी कोई बात नहीं थी। दरअसल यह तो महज़ स्वर्ग में

1. संगति, साथ 2. ऊर्जा (शक्ति) देने वाली 3. व्यवधान, बाधा 4. तेज़ आवाज़ जो कान फोड़ हो

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

चल रहा देवताओं का कोई खेल था, जिसकी झलक बिजलियों की चमक और बादलों की गरज के रूप में देखने को मिल रही थी।

मैंने खिड़की के बाहर झाँका। आकाश बादलों से भरा था जो सेनापतियों द्वारा त्याग दिए गए सैनिकों की तरह आतंक में एक-दूसरे से टकरा रहे थे। विक्षिप्तों[1] की तरह आकाश को भेद-भेद देने वाली तड़ित[2] के अलावा जाड़े की अलस्सुबह[3] का ठंडा भूरा आकाश भी था, जो प्रकृति के तांडव को एक पृष्ठभूमि मुहैया करा रहा था। इस तांडव के गर्जन-तर्जन ने मुझे तीन साल पहले त्रिपुरा में उनाकोटी की एक शाम में पहुँचा दिया।

दिसंबर 1999 में 'ऑन द रोड' शीर्षक से तीन खंडों वाली एक टीवी शृंखला बनाने के सिलसिले में मैं त्रिपुरा की राजधानी अगरतला गया था। इसके पीछे बुनियादी विचार त्रिपुरा की समूची लंबाई में आर-पार जाने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग-44 से यात्रा करने और त्रिपुरा की विकास संबंधी गतिविधियों के बारे में जानकारी देने का था।

त्रिपुरा भारत के सबसे छोटे राज्यों में से है। चौंतीस प्रतिशत से ज़्यादा की इसकी जनसंख्या वृद्धि दर भी खासी ऊँची है। तीन तरफ़ से यह बांग्लादेश से घिरा हुआ है और शेष भारत के साथ इसका दुर्गम जुड़ाव उत्तर-पूर्वी सीमा से सटे मिज़ोरम और असम के द्वारा बनता है। सोनामुरा, बेलोनिया, सबरूम और कैलासशहर जैसे त्रिपुरा के ज़्यादातर महत्त्वपूर्ण शहर बांग्लादेश के साथ इसकी सीमा के करीब हैं। यहाँ तक कि अगरतला भी सीमा चौकी से महज़ दो किलोमीटर पर है। बांग्लादेश से लोगों की अवैध आवक[4] यहाँ ज़बरदस्त है और इसे यहाँ सामाजिक स्वीकृति भी हासिल है। यहाँ की असाधारण जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण यही है। असम और पश्चिम बंगाल से भी लोगों का प्रवास यहाँ होता ही है। कुल मिलाकर बाहरी लोगों की भारी आवक ने जनसंख्या संतुलन को स्थानीय आदिवासियों के खिलाफ़ ला खड़ा किया है। यह त्रिपुरा में आदिवासी असंतोष की मुख्य वजह है।

---

1. पागल 2. बिजली 3. तड़के, बिलकुल सुबह 4. आना

© NCERT not to be republished

पहले तीन दिनों में मैंने अगरतला और उसके इर्द-गिर्द शूटिंग की, जो कभी मंदिरों और महलों के शहर के रूप में जाना जाता था। उज्जयंत महल अगरतला का मुख्य महल है जिसमें अब वहाँ की राज्य विधानसभा बैठती है। राजाओं से आम जनता को हुए सत्ता हस्तांतरण[1] को यह महल अब नाटकीय रूप में प्रतीकित[2] करता है। इसे भारत के सबसे सफल शासक वंशों में से एक, लगातार 183 क्रमिक राजाओं वाले त्रिपुरा के माणिक्य वंश का दुखद अंत ही कहेंगे।

त्रिपुरा में लगातार बाहरी लोगों के आने से कुछ समस्याएँ तो पैदा हुई हैं लेकिन इसके चलते यह राज्य बहुधार्मिक समाज का उदाहरण भी बना है। त्रिपुरा में उन्नीस अनुसूचित जनजातियों और विश्व के चारों बड़े धर्मों का प्रतिनिधित्व मौजूद है। अगरतला के बाहरी हिस्से पैचारथल में मैंने एक सुंदर बौद्ध मंदिर देखा। पूछने पर मुझे बताया गया कि त्रिपुरा के उन्नीस कबीलों में से दो, यानी चकमा और मुघ महायानी बौद्ध हैं। ये कबीले त्रिपुरा में बर्मा या म्यांमार से चटगाँव के रास्ते आए थे। दरअसल इस मंदिर की मुख्य बुद्ध प्रतिमा भी 1930 के दशक में रंगून से लाई गई थी।

अगरतला में शूटिंग के बाद हमने राष्ट्रीय राजमार्ग-44 पकड़ा और टीलियामुरा कस्बे में पहुँचे जो दरअसल कुछ ज़्यादा बड़ा हो गया गाँव ही है। यहाँ मेरी मुलाकात हेमंत कुमार जमातिया से हुई जो यहाँ के एक प्रसिद्ध लोकगायक हैं और जो 1996 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हो चुके हैं। हेमंत कोकबारोक बोली में गाते हैं जो त्रिपुरा की कबीलाई[3] बोलियों में से है। जवानी के दिनों में वे पीपुल्स लिबरेशन ऑर्गनाइजेशन के कार्यकर्ता थे। लेकिन जब उनसे मेरी मुलाकात हुई तब वे हथियारबंद संघर्ष का रास्ता छोड़ चुके थे और चुनाव लड़ने के बाद ज़िला परिषद् के सदस्य बन गए थे।

ज़िला परिषद ने हमारी शूटिंग यूनिट के लिए एक भोज का आयोजन किया। यह एक सीधा-सादा खाना था जिसे सम्मान और लगाव के साथ परोसा गया था।

---

1. एक व्यक्ति के हाथ से दूसरे व्यक्ति के हाथ में जाना 2. अभिव्यक्त करना 3. कबीले से संबंधित

© NCERT not to be republished

भारत की मुख्य धारा में आई मुँहजोर और दिखावेबाज संस्कृति ने अभी त्रिपुरा के जन-जीवन को नष्ट नहीं किया है। भोज के बाद मैंने हेमंत कुमार जमातिया से एक गीत सुनाने का अनुरोध किया और उन्होंने अपनी धरती पर बहती शक्तिशाली नदियों, ताज़गी भरी हवाओं और शांति का एक गीत गाया। त्रिपुरा में संगीत की जड़ें काफ़ी गहरी प्रतीत होती हैं। गौरतलब है कि बॉलीवुड के सबसे मौलिक संगीतकारों में एक एस.डी. बर्मन त्रिपुरा से ही आए थे। दरअसल वे त्रिपुरा के राजपरिवार के उत्तराधिकारियों में से थे।

टीलियामुरा शहर के वार्ड नं. 3 में मेरी मुलाकात एक और गायक मंजु ऋषिदास से हुई। ऋषिदास मोचियों के एक समुदाय का नाम है। लेकिन जूते बनाने के अलावा इस समुदाय के कुछ लोगों की विशेषज्ञता थाप वाले वाद्यों जैसे तबला और ढोल के निर्माण और उनकी मरम्मत के काम में भी है। मंजु ऋषिदास आकर्षक महिला थीं और रेडियो कलाकार होने के अलावा नगर पंचायत में अपने वार्ड का प्रतिनिधित्व भी करती थीं। वे निरक्षर थीं। लेकिन अपने वार्ड की सबसे बड़ी आवश्यकता यानी स्वच्छ पेयजल के बारे में उन्हें पूरी जानकारी थी। नगर पंचायत को वे अपने वार्ड में नल का पानी पहुँचाने और इसकी मुख्य गलियों में ईंटें बिछाने के लिए राज़ी कर चुकी थीं।

हमारे लिए उन्होंने दो गीत गाए और इसमें उनके पति ने शामिल होने की कोशिश की क्योंकि मैं उस समय उनके गाने की शूटिंग भी कर रहा था। गाने के बाद वे तुरंत एक गृहिणी की भूमिका में भी आ गईं और बगैर किसी हिचक के हमारे लिए चाय बनाकर ले आईं। मैं इस बात को लेकर आश्वस्त हूँ कि किसी उत्तर भारतीय गाँव में ऐसा होना संभव नहीं है क्योंकि स्वच्छता के नाम पर एक नए किस्म की अछूत-प्रथा वहाँ अब भी चलन में है।

त्रिपुरा के हिंसाग्रस्त मुख्य भाग में प्रवेश करने से पहले, अंतिम पड़ाव टीलियामुरा ही है। राष्ट्रीय राजमार्ग-44 पर अगले 83 किलोमीटर यानी मनु तक की यात्रा के दौरान ट्रैफिक सी.आर.पी.एफ. की सुरक्षा में काफ़िलों की शक्ल में चलता है। मुख्य सचिव और आई.जी., सी.आर.पी.एफ. से मैंने निवेदन किया था कि वे हमें घेरेबंदी में चलने वाले काफ़िले के आगे-आगे चलने दें। थोड़ी ना-नुकुर के बाद

© NCERT not to be republished

वे इसके लिए तैयार हो गए लेकिन उनकी शर्त यह थी कि मुझे और मेरे कैमरामैन को सी.आर.पी.एफ. की हथियारबंद गाड़ी में चलना होगा और यह काम हमें अपने जोखिम पर करना होगा।

काफ़िला दिन में 11 बजे के आसपास चलना शुरू हुआ। मैं अपनी शूटिंग के काम में ही इतना व्यस्त था कि उस समय तक डर के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं थी जब तक मुझे सुरक्षा प्रदान कर रहे सी.आर.पी.एफ. कर्मी ने साथ की निचली पहाड़ियों पर इरादतन रखे दो पत्थरों की तरफ़ मेरा ध्यान आकृष्ट नहीं किया। "दो दिन पहले हमारा एक जवान यहीं विद्रोहियों द्वारा मार डाला गया था", उसने कहा। मेरी रीढ़ में एक झुरझुरी सी दौड़ गई। मनु तक की अपनी शेष यात्रा में मैं यह खयाल अपने दिल से निकाल नहीं पाया कि हमें घेरे हुए सुंदर और अन्यथा शांतिपूर्ण प्रतीत होने वाले जंगलों में किसी जगह बंदूकें लिए विद्रोही भी छिपे हो सकते हैं।

त्रिपुरा की प्रमुख नदियों में से एक मनु नदी के किनारे स्थित मनु एक छोटा कस्बा है। जिस वक्त हम मनु नदी के पार जाने वाले पुल पर पहुँचे, सूर्य मनु के जल में अपना सोना उँड़ेल रहा था। वहाँ मैंने एक और काफ़िला देखा। एक साथ बँधे हज़ारों बाँसों का एक काफ़िला किसी विशाल ड्रैगन जैसा दिख रहा था और नदी पर बहा चला आ रहा था। डूबते सूरज की सुनहरी रोशनी उसे सुलगा रही थी और हमारे काफ़िले को सुरक्षा दे रही सी.आर.पी.एफ. की एक समूची कंपनी के उलट इसकी सुरक्षा का काम सिर्फ़ चार व्यक्ति सँभाले हुए थे।

अब हम उत्तरी त्रिपुरा ज़िले में आ गए थे। यहाँ की लोकप्रिय घरेलू गतिविधियों में से एक है अगरबत्तियों के लिए बाँस की पतली सींकें तैयार करना। अगरबत्तियाँ बनाने के लिए इन्हें कर्नाटक और गुजरात भेजा जाता है। उत्तरी त्रिपुरा ज़िले का मुख्यालय कैलासशहर है, जो बांग्लादेश की सीमा के काफ़ी करीब है।

मैंने यहाँ के ज़िलाधिकारी से मुलाकात की, जो केरल से आए एक नौजवान निकले। वे तेज़तर्रार[1], मिलनसार और उत्साही व्यक्ति थे। चाय के दौरान उन्होंने मुझे

1. बहुत तेज़

© NCERT not to be republished

बताया कि टी.पी.एस. (टरू पोटेटो सीड्स) की खेती को त्रिपुरा में, खासकर उत्तरी ज़िले में किस तरह सफलता मिली है। आलू की बुआई के लिए आमतौर पर पारंपरिक आलू के बीजों की ज़रूरत दो मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर पड़ती है। इसके बरक्स टी.पी.एस की सिर्फ़ 100 ग्राम मात्रा ही एक हेक्टेयर की बुआई के लिए काफ़ी होती है। त्रिपुरा से टी.पी.एस. का निर्यात अब न सिर्फ़ असम, मिज़ोरम, नागालैंड और अरुणाचल प्रदेश को, बल्कि बांग्लादेश, मलेशिया और विएतनाम को भी किया जा रहा है। कलेक्टर ने अपने एक अधिकारी को हमें मुराई गाँव ले जाने को कहा, जहाँ टी.पी.एस. की खेती की जाती थी।

फिर ज़िलाधिकारी ने अचानक मुझसे पूछा, "क्या आप उनाकोटी में शूटिंग करना पसंद करेंगे?"

यह नाम मुझे कुछ जाना-पहचाना सा लगा, लेकिन इसके बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी। ज़िलाधिकारी ने आगे बताया कि यह भारत का सबसे बड़ा नहीं तो सबसे बड़े शैव तीर्थों में से एक है। संसार के इस हिस्से में जहाँ युगों से स्थानीय आदिवासी धर्म ही फलते-फूलते रहे हैं, एक शैव तीर्थ? ज़िलाधिकारी के लिए मेरी उत्सुकता स्पष्ट थी। 'यह जगह जंगल में काफ़ी भीतर है हालाँकि यहाँ से इसकी दूरी सिर्फ़ नौ किलोमीटर है।' अब तक मेरे ऊपर इस जगह का रंग चढ़ चुका था। टीलियामुरा से मनु तक की यात्रा कर लेने के बाद मैं खुद को ज़्यादा साहसी भी महसूस करने लगा था। मैंने कहा कि मैं निश्चय ही वहाँ जाना चाहूँगा और यदि संभव हुआ तो इस जगह की शूटिंग करना भी मुझे अच्छा लगेगा।

अगले दिन ज़िलाधिकारी ने सारे सुरक्षा इंतज़ाम किए और यहाँ तक कि उनाकोटी में ही हमें लंच कराने का प्रस्ताव भी रखा। वहाँ हम सुबह नौ बजे के आसपास पहुँच गए लेकिन एक घंटे हमें इंतज़ार करना पड़ा क्योंकि खासे ऊँचे पहाड़ों से घिरी होने के चलते इस जगह सूरज की रोशनी दस बजे ही पहुँच पाती है।

उनाकोटी का मतलब है एक कोटि, यानी एक करोड़ से एक कम। दंतकथा के अनुसार उनाकोटी में शिव की एक कोटि से एक कम मूर्तियाँ हैं। विद्वानों का

© NCERT not to be republished

मानना है कि यह जगह दस वर्ग किलोमीटर से कुछ ज़्यादा इलाके में फैली है और पाल शासन के दौरान नवीं से बारहवीं सदी तक के तीन सौ वर्षों में यहाँ चहल-पहल रहा करती थी।

पहाड़ों को अंदर से काटकर यहाँ विशाल आधार-मूर्तियाँ बनी हैं। एक विशाल चट्टान ऋषि भगीरथ की प्रार्थना पर स्वर्ग से पृथ्वी पर गंगा के अवतरण के मिथक[1] को चित्रित करती है। गंगा अवतरण के धक्के से कहीं पृथ्वी धँसकर पाताल लोक में न चली जाए, लिहाज़ा शिव को इसके लिए तैयार किया गया कि वे गंगा को अपनी जटाओं में उलझा लें और इसके बाद इसे धीरे-धीरे पृथ्वी पर बहने दें। शिव का चेहरा एक समूची चट्टान पर बना हुआ है और उनकी जटाएँ दो पहाड़ों की चोटियों पर फैली हैं। भारत में शिव की यह सबसे बड़ी आधार-मूर्ति है। पूरे साल बहने वाला एक जल प्रपात पहाड़ों से उतरता है जिसे गंगा जितना ही पवित्र माना जाता है। यह पूरा इलाका ही शब्दशः[2] देवियों-देवताओं की मूर्तियों से भरा पड़ा है।

इन आधार-मूर्तियों के निर्माता अभी चिह्नित[3] नहीं किए जा सके हैं। स्थानीय आदिवासियों का मानना है कि इन मूर्तियों का निर्माता कल्लू कुम्हार था। वह पार्वती का भक्त था और शिव-पार्वती के साथ उनके निवास कैलाश पर्वत पर जाना चाहता था। पार्वती के जोर देने पर शिव कल्लू को कैलाश ले चलने को तैयार हो गए लेकिन इसके लिए शर्त यह रखी कि उसे एक रात में शिव की एक कोटि मूर्तियाँ बनानी होंगी। कल्लू अपनी धुन के पक्के व्यक्ति की तरह इस काम में जुट गया। लेकिन जब भोर हुई तो मूर्तियाँ एक कोटि से एक कम निकलीं। कल्लू नाम की इस मुसीबत से पीछा छुड़ाने पर अड़े शिव ने इसी बात को बहाना बनाते हुए कल्लू कुम्हार को अपनी मूर्तियों के साथ उनाकोटी में ही छोड़ दिया और चलते बने।

इस जगह की शूटिंग पूरी करते शाम के चार बज गए। सूर्य के ऊँचे पहाड़ों के पीछे जाते ही उनाकोटी में अचानक भयावना अंधकार छा गया। मिनटों में जाने कहाँ से बादल भी घिर आए। जब तक हम अपने उपकरण समेटें, बादलों की सेना

---

1. पौराणिक कथा 2. प्रत्येक शब्द के अनुसार 3. जिनकी अभी पहचान नहीं की जा सकी है

गर्जन-तर्जन के साथ कहर बरपाने लगी। शिव का तांडव शुरू हो गया था जो कुछ-कुछ वैसा ही था, जैसा मैंने तीन साल बाद जाड़े की एक सुबह दिल्ली में देखा और जिसने मुझे एक बार फिर उनाकोटी पहुँचा दिया था।

बोध-प्रश्न

1. 'उनाकोटी' का अर्थ स्पष्ट करते हुए बतलाएँ कि यह स्थान इस नाम से क्यों प्रसिद्ध है?
2. पाठ के संदर्भ में उनाकोटी में स्थित गंगावतरण की कथा को अपने शब्दों में लिखिए।
3. कल्लू कुम्हार का नाम उनाकोटी से किस प्रकार जुड़ गया?
4. 'मेरी रीढ़ में एक झुरझुरी-सी दौड़ गई'—लेखक के इस कथन के पीछे कौन-सी घटना जुड़ी है?
5. त्रिपुरा 'बहुधार्मिक समाज' का उदाहरण कैसे बना?
6. टीलियामुरा कस्बे में लेखक का परिचय किन दो प्रमुख हस्तियों से हुआ? समाज-कल्याण के कार्यों में उनका क्या योगदान था?
7. कैलासशहर के ज़िलाधिकारी ने आलू की खेती के विषय में लेखक को क्या जानकारी दी?
8. त्रिपुरा के घरेलू उद्योगों पर प्रकाश डालते हुए अपनी जानकारी के कुछ अन्य घरेलू उद्योगों के विषय में बताइए?

© NCERT not to be republished

0958CH04

मेरा छोटा-सा निजी पुस्तकालय

धर्मवीर भारती

© NCERT not to be republished

जुलाई 1989 । बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। तीन-तीन ज़बरदस्त हार्ट-अटैक, एक के बाद एक। एक तो ऐसा कि नब्ज़ बंद, साँस बंद, धड़कन बंद। डॉक्टरों ने घोषित कर दिया कि अब प्राण नहीं रहे। पर डॉक्टर बोर्जेस ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी थी। उन्होंने नौ सौ वॉल्ट्स के शॉक्स (Shocks) दिए। भयानक प्रयोग। लेकिन वे बोले कि यदि यह मृत शरीर मात्र है तो दर्द महसूस ही नहीं होगा, पर यदि कहीं भी ज़रा भी एक कण प्राण शेष होंगे तो हार्ट रिवाइव (Revive) कर सकता है। प्राण तो लौटे, पर इस प्रयोग में साठ प्रतिशत हार्ट सदा के लिए नष्ट हो गया। केवल चालीस प्रतिशत बचा। उसमें भी तीन अवरोध[1] (Blockage) हैं। ओपेन हार्ट ऑपरेशन तो करना ही होगा पर सर्जन हिचक रहे हैं। केवल चालीस प्रतिशत हार्ट है। ऑपरेशन के बाद न रिवाइव हुआ तो? तय हुआ कि अन्य विशेषज्ञों की राय ले ली जाए, तब कुछ दिन बाद ऑपरेशन की सोचेंगे। तब तक घर जाकर बिना हिले-डुले विश्राम करें।

बहरहाल, ऐसी अर्द्धमृत्यु[2] की हालत में वापस घर लाया जाता हूँ। मेरी ज़िद है कि बेडरूम में नहीं, मुझे अपने किताबों वाले कमरे में ही रखा जाए। वहीं लिटा दिया गया है मुझे। चलना, बोलना, पढ़ना मना। दिन-भर पड़े-पड़े दो ही चीज़ें देखता

1. रुकावट 2. अधमरा

© NCERT not to be republished

रहता हूँ, बाईं ओर की खिड़की के सामने रह-रहकर हवा में झूलते सुपारी के पेड़ के झालरदार पत्ते और अंदर कमरे में चारों ओर फ़र्श से लेकर छत तक ऊँची, किताबों से ठसाठस भरी अलमारियाँ। बचपन में परी कथाओं (Fairy tales) में जैसे पढ़ते थे कि राजा के प्राण उसके शरीर में नहीं, तोते में रहते हैं, वैसे ही लगता था कि मेरे प्राण इस शरीर से तो निकल चुके हैं, वे प्राण इन हज़ारों किताबों में बसे हैं जो पिछले चालीस-पचास बरस में धीरे-धीरे मेरे पास जमा होती गई हैं।

कैसे जमा हुईं, संकलन की शुरुआत कैसे हुई, यह कथा बाद में सुनाऊँगा। पहले तो यह बताना ज़रूरी है कि किताबें पढ़ने और सहेजने का शौक कैसे जागा। बचपन की बात है। उस समय आर्य समाज का सुधारवादी आंदोलन अपने पूरे ज़ोर पर था। मेरे पिता आर्य समाज रानीमंडी के प्रधान थे और माँ ने स्त्री-शिक्षा के लिए आदर्श कन्या पाठशाला की स्थापना की थी।

पिता की अच्छी-खासी सरकारी नौकरी थी। बर्मा रोड जब बन रही थी तब बहुत कमाया था उन्होंने। लेकिन मेरे जन्म के पहले ही गांधी जी के आह्वान पर उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। हम लोग बड़े आर्थिक[1] कष्टों से गुज़र रहे थे, फिर भी घर में नियमित पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं–'आर्यमित्र साप्ताहिक', 'वेदोदम', 'सरस्वती', 'गृहिणी' और दो बाल पत्रिकाएँ खास मेरे लिए–'बालसखा' और 'चमचम'। उनमें होती थी परियों, राजकुमारों, दानवों और सुंदरी राजकन्याओं की कहानियाँ और रेखाचित्र। मुझे पढ़ने की चाट लग गई। हर समय पढ़ता रहता। खाना खाते समय थाली के पास पत्रिकाएँ रखकर पढ़ता। अपनी दोनों पत्रिकाओं के अलावा भी 'सरस्वती' और 'आर्यमित्र' पढ़ने की कोशिश करता। घर में पुस्तकें भी थीं। उपनिषदें और उनके हिंदी अनुवाद, 'सत्यार्थ प्रकाश'। 'सत्यार्थ प्रकाश' के खंडन-मंडन वाले अध्याय पूरी तरह समझ तो नहीं पाता था, पर पढ़ने में मज़ा आता था। मेरी प्रिय पुस्तक थी स्वामी दयानंद की एक जीवनी, रोचक[2] शैली में लिखी हुई, अनेक चित्रों से सुसज्जित। वे तत्कालीन पाखंडों[3] के विरुद्ध अदम्य[4] साहस

1. रुपये-पैसे संबंधी 2. मनोरंजक 3. दिखावटी, ढकोसला 4. जिसे दबाया न जा सके

दिखाने वाले अद्‌भुत व्यक्तित्व थे। कितनी ही रोमांचक घटनाएँ थीं उनके जीवन की जो मुझे बहुत प्रभावित करती थीं। चूहे को भगवान का भोग खाते देखकर मान लेना कि प्रतिमाएँ भगवान नहीं होतीं, घर छोड़कर भाग जाना, तमाम तीर्थों, जंगलों, गुफाओं, हिमशिखरों पर साधुओं के बीच घूमना और हर जगह इसकी तलाश करना कि भगवान क्या है? सत्य क्या है? जो भी समाज–विरोधी, मनुष्य–विरोधी मूल्य हैं, रूढ़ियाँ[1] हैं, उनका खंडन करना और अंत में अपने से हारे को क्षमा कर उसे सहारा देना। यह सब मेरे बालमन को बहुत रोमांचित[2] करता। जब इस सबसे थक जाता तब फिर 'बालसखा' और 'चमचम' की पहले पढ़ी हुई कथाएँ दुबारा पढ़ता।

माँ स्कूली पढ़ाई पर ज़ोर देतीं। चिंतित रहतीं कि लड़का कक्षा की किताबें नहीं पढ़ता। पास कैसे होगा! कहीं खुद साधु बनकर घर से भाग गया तो? पिता कहते– जीवन में यही पढ़ाई काम आएगी, पढ़ने दो। मैं स्कूल नहीं भेजा गया था, शुरू की पढ़ाई के लिए घर पर मास्टर रखे गए थे। पिता नहीं चाहते थे कि नासमझ उम्र में मैं गलत संगति में पड़कर गाली–गलौज सीखूँ, बुरे संस्कार ग्रहण करूँ अतः मेरा नाम लिखाया गया, जब मैं कक्षा दो तक की पढ़ाई घर पर कर चुका था। तीसरे दर्जे में मैं भरती हुआ। उस दिन शाम को पिता उँगली पकड़कर मुझे घुमाने ले गए। लोकनाथ की एक दुकान ताज़ा अनार का शरबत मिट्टी के कुल्हड़ में पिलाया और सिर पर हाथ रखकर बोले–"वायदा करो कि पाठ्यक्रम की किताबें भी इतने ही ध्यान से पढ़ोगे, माँ की चिंता मिटाओगे।" उनका आशीर्वाद था या मेरा जी–तोड़ परिश्रम कि तीसरे, चौथे में मेरे अच्छे नंबर आए और पाँचवें में तो मैं फर्स्ट आया। माँ ने आँसू भरकर गले लगा लिया, पिता मुसकुराते रहे, कुछ बोले नहीं। चूँकि अंग्रेज़ी में मेरे नंबर सबसे ज़्यादा थे, अतः स्कूल से इनाम में दो अंग्रेज़ी किताबें मिली थीं। एक में दो छोटे बच्चे घोंसलों की खोज में बागों और कुंजों में भटकते हैं और इस बहाने पक्षियों की जातियों, उनकी बोलियों, उनकी आदतों की जानकारी उन्हें मिलती है। दूसरी किताब थी 'ट्रस्टी द रग' जिसमें पानी के जहाजों की कथाएँ थीं–कितने प्रकार के होते हैं, कौन–कौन–सा माल लादकर लाते हैं, कहाँ से लाते हैं,

1. प्रथा 2. पुलकित

© NCERT not to be republished

कहाँ ले जाते हैं, नाविकों की ज़िंदगी कैसी होती है, कैसे-कैसे द्वीप[1] मिलते हैं, कहाँ ह्वेल होती है, कहाँ शार्क होती है।

इन दो किताबों ने एक नयी दुनिया का द्वार मेरे लिए खोल दिया। पक्षियों से भरा आकाश और रहस्यों से भरा समुद्र। पिता ने अलमारी के एक खाने से अपनी चीज़ें हटाकर जगह बनाई और मेरी दोनों किताबें उस खाने में रखकर कहा–"आज से यह खाना तुम्हारी अपनी किताबों का। यह तुम्हारी अपनी लाइब्रेरी है।"

यहाँ से आरंभ हुई उस बच्चे की लाइब्रेरी। बच्चा किशोर हुआ, स्कूल से कॉलेज, कॉलेज से युनिवर्सिटी गया, डॉक्टरेट हासिल की, युनिवर्सिटी में अध्यापन किया, अध्यापन छोड़कर इलाहाबाद से बंबई आया, संपादन किया। उसी अनुपात में अपनी लाइब्रेरी का विस्तार करता गया।

पर आप पूछ सकते हैं कि किताबें पढ़ने का शौक तो ठीक, किताबें इकट्ठी करने की सनक क्यों सवार हुई? उसका कारण भी बचपन का एक अनुभव है। इलाहाबाद भारत के प्रख्यात[2] शिक्षा-केंद्रों में एक रहा है। ईस्ट इंडिया द्वारा स्थापित पब्लिक लाइब्रेरी से लेकर महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित भारती भवन तक। विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी तथा अनेक कॉलेजों की लाइब्रेरियाँ तो हैं ही, लगभग हर मुहल्ले में एक अलग लाइब्रेरी। वहाँ हाईकोर्ट है, अत: वकीलों की निजी लाइब्रेरियाँ, अध्यापकों की निजी लाइब्रेरियाँ। अपनी लाइब्रेरी वैसी कभी होगी, यह तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था, पर अपने मुहल्ले में एक लाइब्रेरी थी–'हरि भवन'। स्कूल से छुट्टी मिली कि मैं उसमें जाकर जम जाता था। पिता दिवंगत हो चुके थे, लाइब्रेरी का चंदा चुकाने का पैसा नहीं था, अत: वहीं बैठकर किताबें निकलवाकर पढ़ता रहता था। उन दिनों हिंदी में विश्व साहित्य विशेषकर उपन्यासों के खूब अनुवाद हो रहे थे। मुझे उन अनूदित उपन्यासों को पढ़कर बड़ा सुख मिलता था। अपने छोटे-से 'हरि भवन' में खूब उपन्यास थे। वहीं परिचय हुआ बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपाल कुण्डला' और 'आनंदमठ' से टालस्टाय की

1. वह भूभाग जिसके चारों ओर पानी हो 2. प्रसिद्ध

'अन्ना करेनिना', विक्टर ह्यूगो का 'पेरिस का कुबड़ा' (हंचबैक ऑफ़ नात्रेदाम), गोर्की की 'मदर', अलेक्जंडर कुप्रिन का 'गाड़ीवालों का कटरा' (यामा द पिट) और सबसे मनोरंजक सर्वा-रीज़ का 'विचित्र वीर' (यानी डॉन क्विक्ज़ोट)। हिंदी के ही माध्यम से सारी दुनिया के कथा-पात्रों से मुलाकात करना कितना आकर्षक था! लाइब्रेरी खुलते ही पहुँच जाता और जब शुक्ल जी लाइब्रेरियन कहते कि बच्चा, अब उठो, पुस्तकालय बंद करना है, तब बड़ी अनिच्छा[1] से उठता। जिस दिन कोई उपन्यास अधूरा छूट जाता, उस दिन मन में कसक[2] होती कि काश, इतने पैसे होते कि सदस्य बनकर किताब इश्यू करा लाता, या काश, इस किताब को खरीद पाता तो घर में रखता, एक बार पढ़ता, दो बार पढ़ता, बार-बार पढ़ता पर जानता था कि यह सपना ही रहेगा, भला कैसे पूरा हो पाएगा!

पिता के देहावसान के बाद तो आर्थिक संकट इतना बढ़ गया कि पूछिए मत। फीस जुटाना तक मुश्किल था। अपने शौक की किताबें खरीदना तो संभव ही नहीं था। एक ट्रस्ट से योग्य पर असहाय छात्रों को पाठ्यपुस्तकें खरीदने के लिए कुछ रुपये सत्र के आरंभ में मिलते थे। उनसे प्रमुख पाठ्यपुस्तकें 'सेकंड-हैंड' खरीदता था, बाकी अपने सहपाठियों से लेकर पढ़ता और नोट्स बना लेता। उन दिनों परीक्षा के बाद छात्र अपनी पुरानी पाठ्यपुस्तकें आधे दाम में बेच देते और उसमें आने वाले नए लेकिन उसे विपन्न[3] छात्र खरीद लेते। इसी तरह काम चलता।

लेकिन फिर भी मैंने जीवन की पहली साहित्यिक पुस्तक अपने पैसों से कैसे खरीदी, यह आज तक याद है। उस साल इंटरमीडिएट पास किया था। पुरानी पाठ्यपुस्तकें बेचकर बी.ए. की पाठ्यपुस्तकें लेने एक सेकंड-हैंड बुकशॉप पर गया। उस बार जाने कैसे पाठ्यपुस्तकें खरीदकर भी दो रुपये बच गए थे। सामने के सिनेमाघर में 'देवदास' लगा था। न्यू थिएटर्स वाला। बहुत चर्चा थी उसकी। लेकिन मेरी माँ को सिनेमा देखना बिलकुल नापसंद था। उसी से बच्चे बिगड़ते हैं। लेकिन उसके गाने सिनेमागृह के बाहर बजते थे। उसमें सहगल का एक गाना था-'दुख के

1. बेमन से, इच्छा न होते हुए भी 2. पीड़ा 3. गरीब

not to be republished © NCERT

दिन अब बीतत नाहीं'। उसे अकसर गुनगुनाता रहता था। कभी-कभी गुनगुनाते आँखों में आँसू आ जाते थे जाने क्यों! एक दिन माँ ने सुना। माँ का दिल तो आखिर माँ का दिल! एक दिन बोली-"दुख के दिन बीत जाएँगे बेटा, दिल इतना छोटा क्यों करता है? धीरज से काम ले!" जब उन्हें मालूम हुआ कि यह तो फिल्म 'देवदास' का गाना है, तो सिनेमा की घोर विरोधी माँ ने कहा-"अपना मन क्यों मारता है, जाकर पिक्चर देख आ। पैसे मैं दे दूँगी।" मैंने माँ को बताया कि "किताबें बेचकर दो रुपये मेरे पास बचे हैं।" वे दो रुपये लेकर माँ की सहमति से फिल्म देखने गया। पहला शो छूटने में देर थी, पास में अपनी परिचित किताब की दुकान थी। वहीं चक्कर लगाने लगा। सहसा देखा, काउंटर पर एक पुस्तक रखी है-'देवदास'। लेखक शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय। दाम केवल एक रुपया। मैंने पुस्तक उठाकर उलटी-पलटी। तो पुस्तक-विक्रेता बोला-"तुम विद्यार्थी हो। यहीं अपनी पुरानी किताबें बेचते हो। हमारे पुराने गाहक हो। तुमसे अपना कमीशन नहीं लूँगा। केवल दस आने में यह किताब दे दूँगा"। मेरा मन पलट गया। कौन देखे डेढ़ रुपये में पिक्चर? दस आने में 'देवदास' खरीदी। जल्दी-जल्दी घर लौट आया, और दो रुपये में से बचे एक रुपया छः आना माँ के हाथ में रख दिए।

"अरे तू लौट कैसे आया? पिक्चर नहीं देखी?" माँ ने पूछा।

"नहीं माँ! फिल्म नहीं देखी, यह किताब ले आया देखो।"

माँ की आँखों में आँसू आ गए। खुशी के थे या दुख के, यह नहीं मालूम। वह मेरे अपने पैसों से खरीदी, मेरी अपनी निजी लाइब्रेरी की पहली किताब थी।

आज जब अपने पुस्तक संकलन पर नज़र डालता हूँ जिसमें हिंदी-अंग्रेज़ी के उपन्यास, नाटक, कथा-संकलन, जीवनियाँ, संस्मरण, इतिहास, कला, पुरातत्त्व[1], राजनीति की हज़ारहा[2] पुस्तकें हैं, तब कितनी शिद्दत[3] से याद आती है अपनी वह पहली पुस्तक की खरीदारी! रेनर मारिया रिल्के, स्टीफ़ेन ज़्वीग, मोपाँसा, चेखव,

---

1. पुरानी बातों और इतिहास के अध्ययन तथा अनुसंधान से संबंध रखने वाली विशेष प्रकार की विद्या 2. हज़ार से अधिक 3. अधिकता, प्रबलता

Rationalised-2023-24

टालस्टाय, दास्तोवस्की, मायकोवस्की, सोल्जेनिस्टिन, स्टीफेन स्पेण्डर, आडेन एज़रा पाउंड, यूजीन ओ नील, ज्याँ पाल सात्र, ऑल्बेयर कामू, आयोनेस्को के साथ पिकासो, ब्रूगेल, रेम्ब्राँ, हेब्बर, हुसेन तथा हिंदी में कबीर, तुलसी, सूर, रसखान, जायसी, प्रेमचंद, पंत, निराला, महादेवी और जाने कितने लेखकों, चिंतकों की इन कृतियों के बीच अपने को कितना भरा-भरा महसूस करता हूँ।

मराठी के वरिष्ठ[1] कवि विंदा करंदीकर ने कितना सच कहा था उस दिन! मेरा ऑपरेशन सफल होने के बाद वे देखने आये थे, बोले—"भारती, ये सैकड़ों महापुरुष जो पुस्तक-रूप में तुम्हारे चारों ओर विराजमान हैं, इन्हीं के आशीर्वाद से तुम बचे हो। इन्होंने तुम्हें पुनर्जीवन दिया है।" मैंने मन-ही-मन प्रणाम किया विंदा को भी, इन महापुरुषों को भी।

बोध-प्रश्न

1. लेखक का ऑपरेशन करने से सर्जन क्यों हिचक रहे थे?
2. 'किताबों वाले कमरे' में रहने के पीछे लेखक के मन में क्या भावना थी?
3. लेखक के घर कौन-कौन-सी पत्रिकाएँ आती थीं?
4. लेखक को किताबें पढ़ने और सहेजने का शौक कैसे लगा?
5. माँ लेखक की स्कूली पढ़ाई को लेकर क्यों चिंतित रहती थी?
6. स्कूल से इनाम में मिली अंग्रेज़ी की दोनों पुस्तकों ने किस प्रकार लेखक के लिए नयी दुनिया के द्वार खोल दिए?
7. 'आज से यह खाना तुम्हारी अपनी किताबों का। यह तुम्हारी अपनी लाइब्रेरी है'—पिता के इस कथन से लेखक को क्या प्रेरणा मिली?
8. लेखक द्वारा पहली पुस्तक खरीदने की घटना का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
9. 'इन कृतियों के बीच अपने को कितना भरा-भरा महसूस करता हूँ'—का आशय स्पष्ट कीजिए।

---
1. बड़ा, पूजनीय

© NCERT not to be republished